International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2016; Page No. 19-24

लोक प्रशासन का उदय और अल्पसंख्यकों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका

Dr. Razia

Ph.D from the Dept. of Political Science, Jamia Millia Islamia, New Delhi, India

सारांश

लोक प्रशासन शासकीय कार्यों का वह भाग है, जिसके अर्तगत सामान्य नीतियों का निर्धारण एवं उनका क्रियान्वयन होता है। लोक प्रशासन का प्रमुख कार्य जनसेवा है, जिसे सरकारी संगठन द्वारा किया जाता है, परन्तु कुछ मामलों में लोक प्रशासन का परिप्रेक्ष्य संकुचित है, क्योंकि यह केवल सार्वजनिक नीतियों से ही सम्बन्धित है, जो केवल सार्वजनिक मामलों पर ही अधिक ध्यान देता है। लोक प्रशासन दोहरे स्वरूप का विषय भी है। यह अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान का शैक्षणिक विषय होने के साथ–साथ क्रियाशील विज्ञान भी है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध सार्वजनिक नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन से है, जो विज्ञान और प्रक्रिया से सम्बंधित है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध विशिष्ट रूप से सरकारी क्रियाकलापों से है। इसके अन्तर्गत वे सभी प्रशासन आ सकते हैं, जिनका जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। लोक प्रशासन सरकार के कार्य का वह भाग है, जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति होती है तथा यह ऐसे उद्देश्यों का क्रियान्वयन है, जिन्हें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने निर्धारित किया है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति लोक सेवाओं द्वारा सहयोगी ढंग से की जाती है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध 'सार्वजनिक' जनता (जिसके अर्न्तगत समाज के सभी वर्ग जैसे– अल्पसंख्यक, अनूसूचित जाति व जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग भी सम्मिलित हैं) से सम्बन्धित प्रशासन से है।

मूलशब्द: अल्पसंख्यक, अनूसूचित जाति व जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, लोक प्रशासन।

प्रस्तावना

लोक प्रशासन मोटे तौर पर शासकीय नीति के विभिन्न पहलुओं का विकास, उन पर अमल एवं उनका अध्ययन है। प्रशासन का वह भाग जो सामान्य जनता के लाभ के लिये होता है, लोक प्रशासन कहलाता है। लोक प्रशासन का संबंध सामान्य नीतियों अथवा सार्वजनिक नीतियों से होता है। एक अनुशासन के रूप में इसका अर्थ वह जनसेवा है जिसे 'सरकार' कहे जाने वाले व्यक्तियों का एक संगठन करता है। इसका प्रमुख उद्देश्य और अस्तित्व का आधार 'सेवा' है। इस प्रकार की सेवा का वित्तीय बोझ उठाने के लिए सरकार को जनता से करों के रूप में राजस्व वसूल कर संसाधन जुटाने पड़ते हैं, जिनकी कुछ निश्चित आय होती है और उसका समतापूर्ण वितरण किया जाता है।

व्हाइट के शब्दों में, लोक प्रशासन में "वे गतिविधियाँ आती हैं, जिनका प्रयोजन सार्वजनिक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।" वुडरो विल्सन के अनुसार, "लोक प्रशासन विधि अथवा कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप में क्रियान्वित करने का काम है। कानून को क्रियान्वित करने की प्रत्येक क्रिया प्रशासकीय क्रिया है।" डिमॉक ने बताया है कि "प्रशासन का संबंध सरकार के "क्या" और "कैसे" से है। "क्या" से अभिप्राय विषय में निहित ज्ञान से है, अर्थात् वह विशिष्ट ज्ञान, जो किसी भी प्रशासकीय क्षेत्र में प्रशासक को अपना कार्य करने की क्षमता प्रदान करता हो। "कैसे" से अभिप्राय प्रबन्ध करने की उस कला एवं सिद्धान्तों से है, जिसके अनुसार, सामूहिक योजनाओं को सफलता की ओर ले जाया जाता है।" हार्वे वाकर ने कहा कि "कानून को क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिये सरकार जो कार्य करती है, वही प्रशासन है।" विलोबी के मतानुसार, "प्रशासन का कार्य वास्तव में सरकार के व्यवस्थापिका अंग द्वारा घोषित और न्यायपालिका द्वारा निर्मित कानून को प्रशासित करने से सम्बद्ध है।" पर्सीमेक्वीन ने बताया कि "लोक प्रशासन सरकार के कार्यों से संबंधित होता है, चाहे वे केन्द्र द्वारा सम्पादित हों अथवा स्थानीय निकाय द्वारा। व्यापक गतिविधि (Generic activity) के रूप में वाल्डो ने इसे "बोद्धिकता की उच्च मात्रा युक्त सहयोगपूर्ण मानवीय–क्रिया" कहा है।

सिद्धान्त एवं विश्लेषण की दृष्टि से लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन, सामान्य प्रशासन के ही दो विशिष्ट रूप हैं, किन्तु इन दोनों रूपों में मौलिक समानताएँ पायी जाती हैं। वर्तमान समय में, इनके मध्य चली आ रही असमानताएँ क्रमशः कम होती जा रही हैं। इसी प्रकार, प्रबन्धन भी प्रशासन से भिन्न न होकर उसी का संचालन एवं निर्देशात्मक भाग है। लोक प्रशासन का विषय बहुत व्यापक और विविधतापूर्ण है। इसका सिद्धांत अनुशासनात्मक (इन्टर–डिसिप्लिनरी) है क्योंकि यह अपने दायरे में अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, प्रबंधशास्त्र और समाजशास्त्र जैसे अनेक सामाजिक विज्ञानों को समेटता है।

लोक प्रशासन या सुशासन के केन्द्रीय तत्व पूरी दुनिया में समान ही हैं – दक्षता, मितव्ययिता और समता उसके मूलाधार हैं। शासन के स्वरूपों, आर्थिक विकास के स्तर, राजनीतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों, अतीत के प्रभावों तथा भविष्य संबंधी लक्ष्यों के आधार पर विभिन्न देशों की व्यवस्थाओं में अंतर अनिवार्य हैं। लोकतंत्र में लोक प्रशासन का उद्देश्य ऐसे उचित साधनों द्वारा, जो पारदर्शी तथा सुस्पष्ट हों, अधिकतम जनता का अधिकतम कल्याण है।

अमेरिकी विद्वान वुडरो विल्सन के अनुसार, एक संविधान बनाने की अपेक्षा उसे चलाना अधिक कठिन है। चूंकि संविधान के क्रियान्वयन में प्रशासन की भूमिका होती है। इसलिए प्रशासन को एक व्यावहारिक अनुशासन माना जाता है, जिसका अध्ययन गंभीरता से करना चाहिए। विल्सन का मुख्य संदेश था कि, लोक प्रशासन को राजनीति से पृथक किया जाना चाहिए। यद्धपि राजनीति प्रशासन के कार्य निर्धारित कर सकती है, परन्तु फिर भी प्रशानिक अनुशासन को अपने कार्य से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। लोक प्रशासन चाहे कला हो या विज्ञान हो, यह एक व्यावहारिक शास्त्र है, जो राजनीति और राजकीय कार्यों से गहराई से सम्बंधित है। व्यवहार में भी लोक प्रशासन एक सर्व–समावेशी (आल–इनक्लूसिव) शास्त्र बन चुका है, क्योंकि यह जन्म से लेकर मृत्यु तक (पेंशन, क्षतिपूर्ति, अनुग्रह राशि आदि के रूप में) व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता

है। वास्तव में यह व्यक्ति को उसके जन्म के पहले से भी प्रभावित कर सकता है, जैसे भ्रूण परीक्षण पर प्रतिबंध या महिलाओं और बच्चों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान जैसी नीतियों के द्वारा। परन्तु एक व्यवस्थित अध्ययन के रूप में लोक–प्रशासन का विकास अभी नया है। लोक–प्रशासन के शैक्षिक अध्ययन का प्रारम्भ करने का श्रेय वुडरो विल्सन को जाता है, जिसने 1887 में प्रकाशित अपने लेख 'द स्टडी ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन' में इस शास्त्र के वैज्ञानिक आधार को विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस लेख में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट भिन्नता दिखाई गई और घोषित किया गया कि प्रशासन को राजनीति से दूर रहना चाहिए और इसी को 'राजनीति–प्रशासन–द्विभाजन' कहते हैं।

विषय के रूप में लोक–प्रशासन का उदय

प्रथम चरण (1887 से 1926)

एक विषय के रूप में लोक–प्रशासन का जन्म 1887 में हुआ। अमेरिका के प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी में राजनीतिशास्त्र के तत्कालीन प्राध्यापक वुडरो विल्सन को इस शास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने 1887 में प्रकाशित अपने लेख 'प्रशासन का अध्ययन' (The Study of Administration) में राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग बताते हुए कहा– 'एक संविधान का निर्माण सरल है, परन्तु इसे चलाना बड़ा कठिन है।' उन्होंने इस 'चलाने' के क्षेत्र के अध्ययन पर बल दिया जो स्पष्टतः 'प्रशासन' ही है। उन्होंने राजनीति और प्रशासन में भेद किया। सन् 1887 में विल्सन के लेख के प्रकाशन के कारण एक ऐसे नए युग का जन्म हुआ, जिसमें लोक–प्रशासन धीरे–धीरे अध्ययन के एक नए क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ, परन्तु अन्य देशों की तुलना में केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही लोक–प्रशासन के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया। वहाँ प्रशासन एक विज्ञान के रूप में विकसित हुआ, जिसके अध्ययन के लिए लोग प्रबन्ध विद्यालयों (Management Schools) में प्रवेश लेते हैं।

इस विषय के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रणेता फ्रैंके गुडनाउ (Frank J-Goodnow) हैं, जिन्होंने 1900 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'राजनीति और प्रशासन' (Politics and Administration) में यह तर्क प्रस्तुत किया कि राजनीति और प्रशासन अलग–अलग हैं, क्योंकि जहाँ राजनीति राज्य–इच्छा को प्रतिपादित करती है वहां प्रशासन का संबंध इस इच्छा या राज्य–नीतियों के क्रियान्वयन से है। वास्तव में यह वह समय था जब अमेरिका में सरकारी क्षेत्र में शिथिलता और भ्रष्टाचार का बोलबाला था और फलस्वरूप सरकार–सुधार के लिए अनेक आन्दोलन चल रहे थे। इस सुधार–आकांक्षी वातावरण में अनेक विद्यालयों में लोक–प्रशासन का अध्ययन–अध्यापन शुरू हो गया। 1914 में अमेरिकी राजनीति विज्ञान संघ ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा कि सरकार में काम करने के लिए कुशल व्यक्तियों की पूर्ति करना राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का एक लक्ष्य है। फलस्वरूप लोक–प्रशासन राजनीति विज्ञान का एक प्रमुख अंग बन गया और इसके अध्ययन–अध्यापक को भारी प्रोत्साहन मिला। सन् 1926 में एल.डी. ह्वाइट की पुस्तक 'लोक–प्रशासन के अध्ययन की भूमिका' (Introduction to the Study of Public Administration) प्रकाशित हुई। वह लोक–प्रशासन की प्रथम पाठ्यपुस्तक थी, जिसमें राजनीति–प्रशासन के अलगाव में विश्वास व्यक्त किया गया और लेखक ने अपनी यह मान्यता प्रकट की कि लोक–प्रशासन का मुख्य लक्ष्य दक्षता और मितव्ययता है। ह्वाइट की पुस्तक को लोक प्रशासन की महत्त्वपूर्ण कृति माना जाता है। लोक–प्रशासन के विकास के इस प्रथम चरण की दो प्रमुख विशेषताएं रहीं – लोक–प्रशासन का उदय और राजनीतिक एवं प्रशासन के अलगाव में विश्वास।

द्वितीय चरण (1927 से 1937)

लोक–प्रशासन के इतिहास में द्वितीय चरण का प्रारंभ डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी (W.F. Willoughby) की पुस्तक 'लोक–प्रशासन के सिद्धांत' (Principles of Public Administration) से मानी जाती है। विलोबी ने यह प्रतिपादित किया कि लोक–प्रशासन में अनेक सिद्धान्त हैं, जिनको क्रियान्वित करने से लोक–प्रशासन को सुधारा जा सकता है। वास्तव में यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ह्वाइट और विलोबी के दोनों प्रवर्तक ग्रन्थों ने लोक–प्रशासन संबंधी पाठ्यपुस्तकों के प्रचलन और उसके अध्ययन की पद्धति का निर्धारण किया। इन दोनों ही पुस्तकों का रूप तकनीकी है, जिनमें उन सभी प्रकार की सामान्य समस्याओं का अध्ययन किया गया है, जिन्हें 'पोस्डकार्ब' शब्द में समाहित किया जा सकता है। इन पुस्तकों में प्रशासकीय अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र में उठने वाली विषय–वस्तु संबंधी समस्याओं का वर्णन नहीं मिलता, बल्कि ये दोनों प्रवर्त्तक ग्रन्थ इस मान्यता पर आधारित हैं कि लोक–प्रशासन को राजनीति से पृथक् और स्वतंत्र होना चाहिए। विलोबी की उपरोक्त पुस्तक के बाद अनेक विद्वानों ने लोक–प्रशासन पर पुस्तकें लिखनी शुरू कीं, जिनमें कुछ उल्लेखनीय नाम हैं– मेरी पार्कर फोलेट, हेनरी फेयोल, मूने (Mooney), रीले (Reiley) आदि। 1937 में लूथर गुलिक तथा उर्विक ने मिलकर लोक–प्रशासन पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक का सम्पादन किया, जिसका नाम है 'प्रशासन विज्ञान पर निबन्ध' (Papers on the Science of the Administration)। द्वितीय चरण के इन सभी विद्वानों की यह मान्यता रही कि प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान है और इसीलिए इसके आगे 'लोक' शब्द लगाना उचित नहीं है। सिद्धान्त तो सभी जगह लागू होते हैं, चाहे वह 'लोक–क्षेत्र' हो या 'निजी–क्षेत्र'। द्वितीय चरण की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें इस बात पर बल दिया गया कि प्रशासन के कुछ सिद्धान्त हैं, जिससे इस विषय का सैद्धान्तिक स्वरूप उभरा।

तृतीय चरण (1938 से 1947)

अब प्रशासन में सिद्धान्तों को चुनौती देने का युग प्रारम्भ हुआ। सन् 1938 से 1947 तक का चरण लोक–प्रशासन के क्षेत्र में ध्वंसकारी अधिक रहा। सन् 1938 में चेस्टर बर्नार्ड की 'कार्यपालिका के कार्य' (The Functions of the Executive) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें प्रशासन के किसी भी सिद्धान्त का वर्णन नहीं किया गया। सन् 1946 में हरबर्ट ने अपने एक लेख में लोक–प्रशासन के तथाकथित सिद्धान्तों को नकारते हुए इन्हें 'किवदंतियों' की संज्ञा दी। सन् 1947 में राबर्ट डहल ने अपने एक लेख में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि लोक–प्रशासन विज्ञान नहीं है और इसको सिद्धान्त की खोज में मुख्यतः तीन बाधाओं का सामना करना पड़ता है–

- प्रथम, विज्ञान 'मूल्य–शून्य' होता है जबकि प्रशासन 'मूल्य–बहुल' है।
- द्वितीय, मनुष्यों के व्यक्तित्व समान नहीं होते और फलस्वरूप प्रशासन के कार्यों में विभिन्नता आ जाती है, एवं
- तृतीय, वह सामाजिक ढांचा भी एक बाधा है जिसके अन्तर्गत लोक–प्रशासन पनपता है।

तृतीय चरण की प्रधानता यही रही कि लोक–प्रशासन का अध्ययन चुनौतियों और आलोचनाओं का शिकार बना, जिससे इस विषय की नई संभावनायें उजागर हुईं।

चतुर्थ चरण (1948 से 1970)

यह चरण एक क्रांतिकारी अथवा 'संकट का काल' रहा क्योंकि इस काल में लोक–प्रशासन में जिन–जिन उपलब्धियों का उल्लेख हो

रहा था, उन सभी को बेकार ठहरा दिया गया। हर्बर्ट साइमन ने जो युक्तिसंगत आलोचना की, उसके फलस्वरूप 'सिद्धान्तवादी' विचारधारा अविश्वसनीय प्रतीत होने लगी। लोक–प्रशासन के स्वरूप के संबंध में अनेक संदेह उठ खड़े हुए और यह एक विवाद का विषय बन गया। इसलिए 1948 से 1970 के चरण को लोक–प्रशासन के 'स्वरूप की संकटावस्था' (Crisis of Identity) कहा गया है। इस युग में लोक–प्रशासन ने मोटे तौर पर दो रास्ते अपनाए –

- प्रथम, कुछ विद्वान एक विषय के रूप में लोक प्रशासन को राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत लेकर आये तथा
- द्वितीय, लोक–प्रशासन के विकल्प की खोज हुई।

जो विद्वान राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत आए उनका तर्क था कि लोक–प्रशासन राजनीति से निकला है और उसका अंग है। इस समय राजनीतिशास्त्र भी कुछ परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था और उसमें लोक–प्रशासन को पहले वाला महत्त्व नहीं दिया जा रहा था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि इस स्थिति में लोक–प्रशासन सौतेलेपन और अकेलेपन का अनुभव करने लगा। लोक–प्रशासन के जिस विकल्प की खोज हुई, वह था– 'प्रशासनिक विज्ञान' (Administrative Science)। लोक–प्रशासन एवं व्यापार प्रबंध (Business Administration) आदि ने मिलकर प्रशासनिक विज्ञान की नींव डाली। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रशासन तो प्रशासन ही है, चाहे वह निजी क्षेत्र में हो या सार्वजनिक क्षेत्र में। 1956 में 'एडमिस्ट्रेटिव साइन्स क्वार्टरली' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ भी हुआ।

पंचम चरण (1971 से अब तक)

चतुर्थ चरण की आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाओं और चुनौतियों के कारण लोक–प्रशासन का अस्तित्व उभरा तथा लोक–प्रशासन का अध्ययन बहुचर्चित हो गया, नए–नए दृष्टिकोण विकसित हुए और फलस्वरूप लोक–प्रकाशन चहुंमुखी प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विभिन्न शास्त्रों के विद्वान और अध्येता लोक–प्रशासन में रूचि लेने लगे। राजनीतिशास्त्र के अध्येता तो प्रारंभ से ही लोक–प्रशासन के अध्ययन में रूचि ले रहे थे। इन विभिन्न अध्ययनों और प्रयत्नों के फलस्वरूप लोक–प्रशासन 'अन्तर्विषयी' (Interdisciplinary) बन गया और आज यह तथ्य है कि समाजशास्त्रों में यदि कोई विषय सबसे अधिक 'अन्तर्विषयी' है तो वह लोक–प्रशासन ही है। इससे लोक–प्रशासन के वैज्ञानिक स्वरूप का विकास हुआ। इतना ही नहीं इससे लोक–प्रशासन के क्षेत्र का विस्तार होता गया और तुलनात्मक लोक–प्रशासन तथा विकास प्रशासन का प्रादुर्भाव हुआ। परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता, अनुसंधान के नए उपकरणों और नवीन सामाजिक संदर्भ, अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता आदि ने तुलनात्मक लोक–प्रशासन को जन्म दिया और उसे आगे बढ़ाया। लोक–प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामों और प्रविधियों का समग्र लोक–प्रशासन के स्वरूप पर गंभीर प्रभाव पड़ा। लोक–प्रशासन में आज पश्चिमी देशों का ही अध्ययन नहीं होता है, वरन् साम्यवादी, अफ्रीका तथा एशिया के देश भी इसकी परिधि में आ गए हैं। लोक–प्रकाशन एक संस्कृति विशेष के घेरे से निकल कर अन्य संस्कृतियों की ओर भी उन्मुख हुआ है, जिसने इसे अधिक लाभ पहुंचाया है और लोक–प्रशासन के क्षितिज का विस्तार किया है। नवीन लोक–प्रशासन ने इस महत्त्वपूर्ण बात पर बल दिया है कि लोक–प्रशासन को सीधे समाज से जुड़ा होना चाहिए। नवीन लोक–प्रशासन विशुद्ध रूप से एक अमेरिकी धारणा है। भारत जैसे देश में नवीन लोक–प्रकाशन की धारणा या विचारों का प्रसार व्यापक रूप से नहीं हुआ है।

1990 के बाद लोक–प्रशासन का स्वरूप और सरकार की भूमिका

1990 में वैश्वीकरण, उदारीकरण, और भूमंडलीकरण के कारण लोक प्रशासन के स्वरूप मे काफ़ी बदलाव आया है, क्योंकि इस दौर में सरकार अपने नागरिकों से सम्बंधित सभी सेवाओं, कार्यों को न केवल प्राइवेट कंपनियों को सौंपती जा रही है, बल्कि सरकार वैश्विक कंपनियों के दबाव में एक तरह से इन कंपनियों को लोगों पर शासन करने का अधिकार भी दे रही है। आज देश के नागरिकों का जरूरते क्या हैं, इस बात की जिम्मेदारी सरकार नहीं बल्कि निजी कंपनिया तय करती हैं। 1990–91 में सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिका का वर्चस्व एक सर्वशक्तिमान देश के रूप में स्थापित हो गया। पूरे विश्व में निजीकरण का बोलबाला हो गया और ये मान लिया गया कि अब समाजवादी व्यवस्था का विश्व में कोई स्थान नहीं और भारत इन वैश्विक घटनाओं से अछूता नही रहा। 1990 के बाद देश में हुए आर्थिक सुधारों और उदारीकरण की घोषणा के बाद एक नई आर्थिक व्यवस्था ने जन्म लिया और लाल फिताशाही के अंत के बाद देश में वैश्विक कंपनियों की भरमार हो गई। सरकार धीरे–धीरे अपने नागरिकों से जुड़े सभी क्षेत्रों से पीछे हटती गई और इन क्षेत्रों में प्राइवेट कंपनियों की घुसपैठ होती गई। विकासशील देशों पर विश्व बैंक और अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोश जैसी संस्थाओं का प्रभाव बढ़ता गया तथा वर्तमान में तो ये संस्थायें विकासशील देशों की राजनीति दिशा भी तय करने लगी हैं। इस युग में जनता को ये विश्वास दिलाया गया कि सरकार आपको बेहतर सेवा देने के लिए पीपीपी मॉडल पर काम करेगी और नई व्यवस्था के अनुसार लोगों को सार्वजनिक निजी भागीदारी का लाभ दिया जाएगा।

सरकार द्वारा अपने नागरिकों से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र में पीपीपी मॉडल को अपनाया गया जिसके परिणामस्वरूप नौकरशाही का स्वरूप तो बदला ही साथ ही पारंपरिक प्रशासन का स्वरूप भी पूर्णरूप से बदल गया। यद्धपि जहां एक तरफ नौकरशाही को जनता की सेवा से दूर करके निजी कंपनियो को जिम्मेदारी दी गई वही नौकरशाही का स्वरूप भी बदला और जिम्मेदारियॉ भी। अब प्रत्येक क्षेत्र निजी क्षेत्र के नियंण में होने के कारण नौकरशाही के उपर महत्वपूर्ण जिम्मेदारी शासन–व्यवस्था की देखभाल करना हो गया और उसका कार्य यह देखना हो गया है कि क्या निजी क्षेत्र जनता की उन सभी आवश्कताओं को पूरा कर पा रहे है, जिस उद्देश्य से उन्हें ये काम सौंपा गया था? क्या जनता उनके काम से संतुष्ट है? इत्यादि ये सभी जिम्मेदारियां वर्तमान नौकरशाही निभा रही है। इस दौर में एक और क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ, जिसे संचार क्रांति कहते है। संचार क्रांति ने भारत ही नहीं वरन् सभी विकासशील देशों की सरकार की जनता के प्रति दृष्टिकोण में बड़े स्तर पर बदलाव किया। संचार क्रांति के फलस्वरूप सभी लोकतांत्रिक देशों के प्रशासन के स्तर पर व्यापक बदलाव हुआ, जिसे अब सुशासन कहते है। पिछले कुछ दिनों में सुशासन की अवधआरणा का बहुत विस्तार हुआ है। भारत जैसे देशों में सूचना के अधिकार के कारण शासन व्यावस्था में वृहद स्तर पर परिवर्तन हुआ है। एक तरफ प्रशासन जहां सूचना क्रांति के कारण लोगों की समस्याओं को तेजी से निपटाने का हर संभव प्रयास कर रहा है। वहीं दूसरी तरफ जनता अपनी समस्याओं को लेकर जागरूक हुई है। यही कारण है कि सभी नवीन प्रशासनिक अवधारणाओं का सृजन हुआ है। जैसे ग्रामीण समस्याओं को सुलझाने के लिए चौपाल, ई– प्रशासन, मेगा अदालते, आदि। प्रशासन के बदले स्वरूप ने कई क्षेत्रों में अत्यंत प्रभावशाली भूमिका भी निभाई है। दिल्ली जैसे महानगरों में जन–भागीदारी योजना के फलस्वरूप सभी स्थानीय समस्याओं को सार्वजनिक निजी के स्तर पर सुलझाया जा रहा है। 1990 में हुए लाल फिताशाही के अंत के बाद जब नौरशाही अपने कार्य–क्षेत्र से

बाहर होकर काम करने लगी, तो एक नए राज व्यवस्था की शुरूआत हुई, जिसमें लोक प्रशासन का स्वरूप बदला, जिसे आज नई लोक व्यवस्था के रूप में भी जाना जाता है।

लोक प्रशासन की आवश्यकता और प्रशासन द्वारा अल्पसंख्यकों के लिए किए गए प्रावधान

वर्तमान में आधुनिक जीवन के महत्व एवं बढ़ती जटिलता के कारण लोक प्रशासन में वृद्धि हो रही है और इसी वजह से नागरिकों की दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता भी की गई है, क्योंकि कुछ ऐसे नागरिक पहलू भी हैं, जो किसी सरकार या अन्य ऐजेंसी के सम्पर्क में नहीं आए हैं। प्राचीन समय में नागरिकों की जरूरतें सीमित थीं। इसलिए वे अपने अस्तित्व एवं कम या ज्यादा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गांव व समुदायों में रहते थे, परन्तु वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांतियों से स्थिति बदल गई है। औद्योगिक उत्पादों के लिए विशेषज्ञता की डिग्री की आवश्यकता होती है, जो बड़े शहरों में रहने वाले लोगों के लिए अति आवश्यक है। वर्तमान में लोक प्रशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है, क्योंकि लोक प्रशासन के कारण सभी सरकारी कार्यों को संपन्न किया जाता है और सरकार द्वारा बनायीं गयी स्कीम व कार्यक्रमों को क्रियान्वित भी किया जाता है। लोक प्रशासन द्वारा समाज के प्रत्येक वर्ग विशेष रूप से पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण व उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम एवं योजनाओं को लागू किया जाता है, ताकि प्रत्येक वर्ग को एक धारा में लाया जा सके। सरकार द्वारा समाज के पिछड़े वर्ग विशेषकर अल्पसंख्यकों के उत्थान के लिए भी विभिन्न प्रकार के प्रावधान किये गए हैं और ये प्रावधान विभिन्न सरकारी विभागों के प्रशासन द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं, जो निम्न प्रकार हैं।

अल्पसंख्यकों के लिए विभिन्न प्रावधान

1. केन्द्रीय मंत्रालयों और राज्य सरकार के परामर्श से अल्पसंख्यक समुदायों के बचाव और सुरक्षा के नीतिगत प्रयास।
2. भाषायी अल्पसंख्यकों एवं भाषायी अल्पसंख्यकों के आयुक्त के कार्यालय से जुड़े विषयों का प्रावधान।
3. अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग अधिनियम से जुड़े विषयों का प्रावधान।
4. निष्क्रांत संपदा प्रशासन अधिनियम 1950 (1950 का 31) के तहत निष्क्रांत वक्फ संपत्ति से संबंधित कार्य।
5. विदेश मंत्रालय के परामर्श से पंत–मिर्जा समझौता 1955 के अनुसार पाकिस्तान में गैर मुस्लिम प्रार्थना स्थलों और भारत में मुस्लिम मकबरों की सुरक्षा और संरक्षण।
6. विदेश मंत्रालय के परामर्श से पड़ोसी देशों में अल्पसंख्यक समुदायों से संबंधित मामले।
7. चौरिटी और दातव्य संस्थाओं, विभाग द्वारा देखे जा रहे विषयों से संबंधित दातव्य और धार्मिक निधि।
8. अल्पसंख्यकों, मौलाना आजाद एजुकेशन फाउंडेशन सहित अल्पसंख्यक संगठनों के सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक प्रस्थिति से जुड़े विषयों का प्रावधान।
9. वक्फ अधिनियम 1995 (1995 का 43) और केन्द्रीय वक्फ काउंसिल का प्रावधान।
10. दरगाह ख्वाजा साहब अधिनियम, 1955 (1955 का 36)।
11. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास और वित्त निगम सहित अल्पसंख्यकों के कल्याण कार्यक्रमों और परियोजनाओं के लिए वित्त प्रदायन।
12. केन्द्रीय और राज्य लोक क्षेत्रक उपक्रमों के साथ–साथ निजी क्षेत्रकों में अल्पसंख्यकों के लिए रोजगार के अवसर।
13. अन्य केन्द्रीय मंत्रालयों और राज्य सरकारों के परामर्श से अल्पसंख्यकों के संरक्षण और सुरक्षा से संबंधित उपाय।
14. धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों के सामाजिक और आर्थिक रूप में पिछड़े तबकों के लिए राष्ट्रीय आयोग।
15. अल्पसंख्यकों के लिए प्रधानमंत्री का नया 15–सूत्री कार्यक्रम।
16. अल्पसंख्यक समुदायों से संबंधित कोई भी अन्य मुद्दा।

निम्नलिखित विषयों से संबंधित मामले विदेश मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं, जो प्रशासन का ही एक भाग है–

1. हज समिति अधिनियम, 2002।
2. हज समिति कानून, 2002।
3. केन्द्रीय हज समिति।

निम्नलिखित विषयों से संबंधित मामले मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन आते हैं–

1. उर्दू भाषा की उन्नति हेतु राष्ट्रीय परिषद् (NCPUL)।
2. अल्पसंख्यकों की शिक्षा।
3. अल्पसंख्यकों के शिक्षा संस्थानों के लिए राष्ट्रीय आयोग।
4. मदरसाओं में स्तरीय शिक्षा प्रदान करने की योजना (SPQEM)
5. अल्पसंख्यक संस्थानों की आधारभूत संरचना के विकास के लिए योजना (IDMI)
6. निजी सहायता प्राप्तध बिना सहायता वाली अल्पसंख्यक संस्थानों (प्राथमिक/माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालय) में आधारभूत संरचना विकास की योजना।
7. बच्चों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009.

अल्पसंख्यक महिलाओं में नेतृत्व विकास की योजना और प्रशासन की भूमिका

1. देश में महिलाओं की स्थिति, खासकर उनकी जो समाज के पिछड़े तबके से आती हैं, दयनीय है। बच्ची अपने जन्म के पहले से ही भेदभाव का शिकार होती हैं और जन्म के बाद भी। उनके साथ खान–पान, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि के मामलों में भेदभाव किया जाता है और किशोरावस्था आते–आते उनकी शादी कर दी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों की ज्यादातर महिलाओं को खाना पकाने, पानी लाने, बच्चों को स्कूल भेजने, जानवरों को चारा देने, गाय दुहने जैसे कम दृष्टिगोचर काम करने पड़ते हैं। जबकि, पुरुषों के हिस्से ऐसे काम होते हैं जो अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं, जैसे– दूध की बिक्री, खेती करना और खेती के उत्पाद बेचकर धन कमाना। अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाओं की स्थिति भी ठीक नहीं। वे केवल अल्पसंख्यक ही नहीं होतीं, बल्कि वे हाशिए पर पड़े बहुसंख्यक समुदाय के भी अंग होती हैं। परिवार के अहम फैसलों में उनकी कोई इच्छा नहीं पूछी जाती और सामाजिक कामों में भी उन्हें भाग लेने के अवसर नहीं दिए जाते और इस प्रकार समाज से मिलने वाले लाभों में उनकी भागीदारी बराबर की नहीं होती।
2. महिलाओं का सशक्तीकरण न केवल सामाजिक समानता के लिए जरूरी है, बल्कि यह गरीबी उन्मूलन, आर्थिक विकास, और सभ्य समाज की मजबूती के लिए भी उतना ही जरूरी है। महिलाएं एवं बच्चे किसी गरीबी से जूझते परिवार में सबसे अधिक पीड़ित होते हैं और इसलिए उन्हें मदद की सबसे अधिक जरूरत होती है। महिलाओं खास कर माताओं का सशक्तीकरण तो और भी अधिक जरूरी होता है, क्योंकि परिवार की वे धुरी होती हैं और वे ही बच्चों की परवरिश, पालन–पोषण और उनके व्यक्तित्व को बनाने की असली

जिम्मेदारी उठाती हैं।

3. भारतीय मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति पर एक उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट (सच्चर रिपोर्ट) में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि 13.83 करोड़ की जनसंख्या वाले भारत के सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय विकास की दौड़ में पीछे छूट रहा है और इस समुदाय के अन्दर महिलाओं की दशा तो और भी बुरी है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने 2007–08 में "अल्पसंख्यक महिलाओं के जीवन, आजीविका और नागरिक सशक्तीकरण" के लिए एक योजना चलाई, जिसका लक्ष्य है– अल्पसंख्यक समुदाय की वंचित महिलाओं तक विकास का लाभ पहुंचाना। अब इस योजना को अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय को हस्तांतरित कर दिया गया है।

   अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय द्वारा इस योजना को उपयुक्त तरीके से पुनर्गठित किया गया है और इसका नाम दिया गया "अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए नेतृत्व विकास की योजना"।

4. अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय द्वारा जिन अल्पसंख्यक समुदायों के मामले देखे जाते हैं वे हैं– मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन और पारसी, जिन्हें राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 की धारा 2 (सी) में मान्यता प्रदान की गई है। इन अल्पसंख्यक समुदायों की उपयुक्त महिलाएं लक्षित समूह के रूप में होंगी। हालांकि, समाज की बहुविधता को सबल करने और उनकी समुन्नति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से इस योजना को पुनर्गठित किया गया, जिसमें गैर–अल्पसंख्यक महिलाओं की संख्या 25ः से अधिक नहीं रखी जाएगी।

इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि अक्षमता वाली अनुसूचित जातिध्जनजातिध्अन्य पिछड़े वर्गों की महिलाओं को भी इसमें 25ः के समूह के अनुसार ही शामिल किया जाए। पंचायती राज की संस्थाओं के अंतर्गत किसी भी समुदाय की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को प्रेरित किया जाएगा कि वे इसमें प्रशिक्षु के रूप में शामिल हों।

"अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए नेतृत्व विकास की योजना" के उद्देश्य

1. इस योजना का प्रमुख उद्देश्य है– अल्पसंख्यक महिलाएँ तथा साथ ही आस–पास के गाँवों और इलाकों के अन्य समुदायों की महिलाओं में नेतृत्व का विकास करना, उन्हें सशक्त बनाना और उनमें आत्मविश्वास जगाना, ताकि वे सरकारी व्यवस्था जैसे बैंकों तथा सभी स्तरों पर मध्यस्थों के साथ व्यवहार कर सकें।

   परंपरागत व्यवस्था के अनुसार अधिकतर महिलाओं का जीवन कठिनाइयों से भरा होता है, जिसमें तब और बढ़ोत्तरी हो जाती जब उन्हें नागरिक तथा मूलभूत सुविधाओं एवं सामाजिक और आर्थिक स्थितियों से संबंधित आधारभूत ढांचों एवं सुविधाओं का लाभ नहीं मिल पाता। यदि महिलाएं आगे आकर अपने अधिकार की लड़ाई नहीं लड़ेंगी तो उनकी कठिनाईयों को दूर होने में काफी वक्त लग जाएगा। योजना का लक्ष्य उन गैर सरकारी संगठनों के द्वारा महिलाओं तक पहुंचना है, जिन्हें नेतृत्व विकास में प्रशिक्षण कार्य के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी, ताकि महिलाएं आत्मविश्वास के साथ घरों से बाहर निकल सकें और अपने अधिकारों का प्रयोग पूर्णरूप से कर सकें एवं उनके लिए उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं व सुविधाओं का वे लाभ उठा सकें तथा विकास की दौड़ में अपनी भूमिका निभा सकें।

2. इस योजना के संदर्भ में नेतृत्व का अर्थ है– अल्पसंख्यक समुदायों की महिलाओं का सशक्तीकरण किया जाना, उनका घर के सीमित दायरे से बाहर आकर नेतृत्वकारी भूमिका निभाना और अधिकारों के पूर्णरूपेण प्रयोग के साथ ही अपने लिए सेवाओं व सुविधाओं का लाभ उठाते हुए विकास की दौड़ में अपनी भूमिका निभाना।

3. अल्पसंख्यक समुदायों की महिलाओं के नेतृत्व विकास की योजना के अनुसार समर्थन के साथ सेवा प्रदान करना, विकास के क्षेत्र में किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप है, जिसमें सतत रूप से लगे रहने की आवश्यकता होती है और ऐसे कर्मियों की आवश्यकता होती है, जो लक्षित समूह के घर तक पहुंच कर काम कर सकें। योजना को लागू कराने वाले अधिकारी के नेतृत्व प्रशिक्षण को प्राप्त कर रही महिलाओं के समूह को सेवा प्रदान करने के लिए समय–समय पर नियमित रूप से गांवों या संबद्ध इलाकों का दौरा करना होता है, ताकि उन्हें उनको सिखाई जाने वाली तकनीकियों के बारे में निर्देशित किया जा सके, जिससे उनके प्रयास लाभप्रद हों। ऐसे क्षेत्र आधारित सघन क्रियाकलाप, ऊंचे लक्ष्य वाले और समर्पित समुदाय पर आधारित संगठनों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं। महिलाओं के घर–गृहस्थी के कामकाज ऐसे होते हैं, जिनके कारण घर के निकट रहना उनकी बाध्यता होती है। इसलिए इस योजना को चलाने वाले संगठनों के लिए यह जरूरी है कि वे गांव या संबद्ध इलाके में जाकर प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य करें, जहां ऐसी महिलाएं निवास करती हैं। इन संगठनों के पास महिलाओं के लिए मान्यता प्राप्त सरकारी प्रशिक्षण संस्थानों में आवासीय प्रशिक्षण कार्य संचालित करने का अनुभव और संसाधन होने चाहिए। इसलिए यह जरूरी है कि इन संगठनों के पास गांवों और दूर दराज के इलाकों में जाकर काम करने की सुविधा, इच्छा शक्ति और समर्पण होने चाहिए और साथ ही उनके पास इस के लिए पर्याप्त संख्या में मानव संसाधन भी होने चाहिए और तथा सरकारी प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण कार्य संपन्न करने का अनुभव भी होना चाहिए।

4. नेतृत्व विकास प्रशिक्षण योजना का क्रियान्वयन अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय द्वारा किया जाएगा। इसके अलावा मंत्रालय द्वारा चयनित कुछ संगठनों द्वारा भी परियोजना का क्रियान्वयन सीधे–सीधे उनके अपने सांगठनिक ढांचे द्वारा अथवा गाँवों और दूरदराज के इलाकों में कार्यरत छोटे–छोटे संगठनों के द्वारा किया जा सकता है। विभिन्न गांवों व इलाकों में परियोजना के संचालन में यदि किसी चयनित संगठन द्वारा छोटे संगठनों को शामिल किया जाए तो यह उस संगठन की जिम्मेदारी होगी कि वह सुनिश्चित करे कि छोटे संगठन भी निर्धारित पूर्व–योग्यताओं को धारण करें एवं नियमों तथा शर्तों का पालन करें, जो योजना में दिए गए हैं। परियोजना के उचित और सफल क्रियान्वयन का दायित्व उस संगठन का होगा, जिसे मंत्रालय द्वारा परियोजना सौंपी गई है।

5. नेतृत्व प्रशिक्षण के मॉड्यूल में संविधान एवं विभिन्न अधिनियमों के अनुसार आने वाली महिलाओं से संबंधित शिक्षा, सशक्तीकरण, जीविका आदि के मुद्दे तथा केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा संचालित शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, पोषाहार, टीकाकरण, परिवार नियोजन, रोग नियंत्रण, उचित मूल्य की दुकान, पेय जल आपूर्ति, विद्युत आपूर्ति, सफाई, आवास, स्वरोजगार, दिहारी रोजगार, दक्षता प्रशिक्षण, महिलाओं के विरुद्ध अपराध आदि से संबंधित परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के अनुसार उपलब्ध होने वाले अवसर, सुविधाएं और सेवाएं शामिल किए जाएंगे। इसमें पंचायती राज की संस्थाओं, नगर पालिकाओं में महिलाओं की भूमिका, महिलाओं के अधिकार,

सूचना का अधिकार, नरेगा, घरेलू सर्वेक्षण और गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की सूची, कार्यालय का ढांचा और उसकी क्रियाविधि, शिकायत निस्तारण फोरम और उसकी कार्यविधि आदि भी शामिल होंगे।

उपयुर्क्त वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों के विकास व कल्याण के लिए जो भी प्रावधान किये गए हैं, उनको पर्याप्त ढंग से लक्षित वर्ग तक पहुॅचाने का प्रमुख कार्य प्रशासन का है, जिसे प्रशासन द्वारा बहुत ही अच्छे ढंग से निभाने का प्रयास किया जाता है, परंतु कुछ मामलों में यदि प्रशासन की बात की जाये तो यह कहना अनुचित नहीं होगा कि कभी–कभी प्रशासन अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों का पालन ठीक ढंग से नहीं करता, जिसके कारण सरकार द्वारा बनायी गयी विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं का लाभ लक्षित समूह तक नहीं पहुॅच पाता और वे इन योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं। इसलिए वर्तमान भूमंडलीकरण के युग में प्रशासन को अपने सैद्धान्तिक रूप को व्यवहार में लाकर जनसेवा की ओर ध्यान देना चाहिए, ताकि प्रशासन के विषय में सैद्धान्तिक रूप से प्रस्तुत किये गए मॉडल को सत्य सिद्ध किया जा सके और प्रशासन देश के विकास में और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम सिद्ध हो सके।

संदर्भ सूची

1. ″अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए नेतृत्व विकास की योजना″ Ministry of Minority Affairs, http://www.minorityaffairs.gov.in/hi/.
2. Rumki Basu, Public Administration Concepts and Theories, New Delhi, Sterling Publishers Private Limited, 2004.
3. Avasthi & Maheshwari, Public Administration, Agra, Lakshmi Narayan Agarwal, 1962.
4. Nicholas Henry. Paradigms of Public Administration, Public Administration Review. 1975, 35-4.
5. Public Administration Reform, UNDP, available at: http://www.undp.org/content/dam/aplaws/publication/en/publications/democratic-governance/dg-publications-for-website/public-administration-reform-practice-note-/PARPN_English.pdf
6. Introduction to Public Administration, IGNOU, Notes, available at: http://www.nou.edu.ng/uploads/NOUN_OCL/pdf/SMS/PAD202%20introduction%20to%20public%20administration.Pdf
7. George Frederickson H. The Journal of Public Administration Research and Theory: Origins and Early Development, Oxfor Journal.
8. Meetika Srivastava, Evolution of the System of Public Administration in India from the Period 1858- 1950: A Detailed Study Highlighting the Major Landmarks in Administrative History Made During this Period, Social Science Research Network, 2009.
9. Naidu SP. Public Administration Concepts and Theories, Visakhapatnam, New Age International Publishers, 1996.
10. Eran Vigoda, Public Administration-an Interdisciplinary Critical Analyses, Israel, University of Haifa, 2002.
11. Jamil Jreisat, Globalism and Comparative Public Administration, Florida, CRC Press Taylor and Francis Group, 2012.
12. Claire L. Felbinger, Wendy A. Haynes, Outstanding Women in Public Administration, New York, M.E Sharpe, 2004.